श्री शत्रुंजय मुक्ति सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

श्री शत्रुंजय-मुक्ति
सा विद्या या विमुक्तये
सम्यग्ज्ञान अभ्यासक्रम

तृतीय वर्ष

शाह गोविन्दजी वीरम फेक्टरी कम्पाउन्ड़, मोंढा रोड, औरंगाबाद

(सम्यग्ज्ञान विशारद) अभ्यास ६

❀ शुभाशीर्वाद ❀

तपस्वीरत्न, अचलगच्छाधिपति प.पू.आ.भ. श्री गुणोदयसागरसूरिश्वरजी म.सा.

❀ दिव्य कृपा ❀

आगम आराधिका बा.ब्र.प.पू. मुक्तिश्रीजी म.सा.

शासन प्रभाविका प.पू. जयलक्ष्मीश्रीजी म.सा.

मार्गदर्शिका- प्रेरक - सा. डॉ. जयदर्शिताश्रीजी म.सा. M.Sc., Ph.D.

हिंदी अनुवाद - सौ. काश्मीरा लोडाया, सौ. भारतीबेन दंड, सौ. भारती लोडाया

सौजन्य : एक श्रुतभक्त परिवार

स्तोत्र - अर्थ - रहस्य

बृहद्शांति (चालु)

(२) शान्तिः शान्तिकरः श्रीमान्, शान्ति र्दिशतु मे गुरुः ।
शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिर्गृहे गृहे ।।१४।।

-: शब्दार्थ :-

शांति : श्री शांतिनाथ भगवान

शांतिकर : जगत में शांति करने वाले

श्रीमान : ज्ञानादिकलक्ष्मीवाले, पूज्य

शांति : शांति

दिशतु : दो (दिजीए)

मे : मुझे

गुरु : जगद्गुरु, जगत को धर्म का उपदेश देने वाले

शांति : शांति
ऐव : ही
सदा : निरंतर
तेषाम् : उन्हें
तेषाम् : उन्हें
येषाम् : जिनके
शांति : श्री शांतिनाथ भगवान
गृहे गृहे : घर घर में

अर्थ संकलना :-

जगत में शांति करने वाले, जगत को धर्म का उपदेश देने वाले, पूज्य शांतिनाथ मुझे शांति दो । जिनके घर घर में शांतिनाथ पूजे जाते हैं, उन्हें सदा शांति ही रहती है ।

(गाथा)

(३) उन्मृष्ट-रिष्ट-दृष्ट-ग्रह-गति-दुःस्वप्न-दुर्निमित्तादि ।
सम्पादित-हित सम्पन्नाम-ग्रहणं जयति शान्तेः ।।१५।।

-: शब्दार्थ :-

उन्मृष्ट- नाश किया है जिन्होंने
रिष्ट - उपद्रव
दुष्ट-ग्रह - ग्रहों की खराब असर
दुःस्वप्न - दुष्ट स्वप्न
दुर्निमित्तादि - दुष्टांग स्फूरणा रुप अपशकुन आदि निमित्त
सम्पादित-हित-संपत - जिसके द्वारा हित और संपत्ति को प्राप्त किया जाय ऐसा ।
नाम-ग्रहणं - नामोच्चार
जयति - जय पाता है
शान्तेः - श्री शांतिनाथ भगवान का

अर्थ-संकलना :- उपद्रव, ग्रहों की दुष्ट गति, दुःस्वप्न, दुष्ट अंगस्फूरण और दुष्ट निमित्तादि का नाश करनेवाला तथा आत्महित ओर संपति को प्राप्त कराने वाला शांतिनाथ भगवान का नामोच्चार जय पाता है ।

मूल - (५. शांति व्याहरण्)

(गाथा)

श्रीसङ्घ-जगज्जनपद-राजाधिप-राज-सन्निवेशानाम् ।
गोष्ठिक-पुरमुख्यानां, व्याहरणैर्व्याहरेच्छान्तिम् ।।१६।।

-: शब्दार्थ :-

श्रीसंघ - श्री संघ
जगज्जनपद - जगत के जनपद
राजाधिप-राज - महाराजा और राजा के
सन्निवेशानाम् - निवास स्थानोके
गोष्ठिक - गोष्ठि की सभ्य (प्राचिन काल में विद्वद मंडली को गोष्ठि के रुप में पहचानने का रिवाज था)
पुरमुख्यानां - नगर के आगेवान / शहर के अग्रगण्य नागरिक
व्याहरणैः - नामोच्चार के द्वारा
व्याहरेत - बोलना चाहिये
शांतिम् - शांति

अर्थ-संकलना - श्रीसंघ, जगत के जनपदो, महाराजाओ, राजाओ के निवासस्थानो, विद्वद्मंडली के सभ्यो तथा अग्रगण्य नागरिको के नाम लेकर शांति बोलनी चाहिये.....१६

मूल -

(२) श्री श्रमणसङ्घस्य शान्तिर्भवतु ।
श्री जनपदानां शान्तिर्भवतु ।
श्री राजाधिपानां शान्तिर्भवतु ।
श्री राजसन्निवेशानां शान्तिर्भवतु ।
श्री गोष्ठिकानां शान्तिर्भवतु
श्री पौरमुख्याणां शान्तिर्भवतु ।
श्री पौरजनस्य शान्तिर्भवतु ।
श्री ब्रह्मलोकस्य शान्तिर्भवतु ।।१७।।

शब्दार्थ - स्पष्ट है ।

अर्थ-संकलना - श्री श्रमण संघ को शांति हो, श्री जनपदो (देशो) को शांति हो, श्री महाराजओं को शांति हो, श्री राजाओं के निवास्थानों में शांति हो । श्री गोष्ठिको को-विद्वद्मंडली के सभ्यो को शांति हो । श्री अग्रगण्य नागरिको को शांति हो । श्री नगरजनों को शांति हो । श्री ब्रह्मलोक में शांति हो.....१७

मूल - (६. आहुति-त्रयम)

ॐ स्वाहा ॐ स्वाहा ॐ श्री पार्श्वनाथाय स्वाहा ।।१८

शब्दार्थ - स्पष्ट है ।

अर्थ-संकलना - ॐस्वाहा, ॐ स्वाहा, ॐ श्री पार्श्वनाथाय स्वाहा.....१८

श्री दंडक प्रकरण

श्री गजसार मुनि

(१५) उपयोगद्वार

उवओगा मणुअेसु, बारस नव निरय तिरिय देवेसु ।
विगल दुगे पण छक्कं, चउरिंदिसु थावरे तियगं ।।२२।।

मनुष्योंके विषयमें बारह उपयोग होते है । नारकी, तिर्यंच और देवताओं को नौ उपयोग होते है । द्विइन्द्रिय और तेउन्द्रियरुप विकलेन्द्रिय को दो दंडक के विषय में पांच उपयोग और चउरिन्द्रिय को छह उपयोग होते है, और स्थावर को तीन उपयोग होते है । पदार्थ के सामान्य धर्म का उपयोग (वपराश) - व्यापार वह दर्शनोपयोग दर्शन के आधार पर उसके भी चार भेद है -

१) चक्षुदर्शनोपयोग २) अचक्षुदर्शनोपयोग ३) अवधिदर्शनोपयोग एवं ४) केवल दर्शनोपयोग

पदार्श के विशेष धर्म का उपयोग (वपराश) व्यापार वह ज्ञानोपयोग ज्ञान एवं अज्ञान के आधार पर उसके भी आठ भेद है -

१) मतिज्ञानोपयोग २) श्रुतज्ञानोपयोग ३) अवधिज्ञानोपयोग ४) मनःपर्यवज्ञानोपयोग ५) केवलज्ञानोपयोग ६) मतिअज्ञानोपयोग ७) श्रुतअज्ञानोपयोग ८) विभंगज्ञानोपयोग

दर्शन के चार एवं ज्ञान -अज्ञान के ८ (आठ) कुल मिलाकर १२ उपयोग है । अब हम दंडक के आधार पर किस जीव में कितने उपयोग होते है वह देखेंगे -

दंडक संख्या	दंडक नाम	उपयोग
३.	गर्भज मनुष्य	(१२) सभी बारह उपयोग होते है ।
१५.	ग. तिर्यंच, नारकी, देवता	(९) चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन, मति-श्रुत अवधिज्ञान मति-श्रुत अज्ञान. विभंगज्ञान
१.	चउरिन्द्रिय	(६) चक्षु-अचक्षुदर्शन, मति-श्रुत ज्ञान, मति-श्रुत अज्ञान
२.	द्विइन्द्रिय - तेइन्द्रिय	(५) अचक्षुदर्शन, मति-श्रुतज्ञान, मति-श्रुत अज्ञान
५.	पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय वायुकाय और वनस्पतिकाय	(३) अचक्षुदर्शन, मतिश्रुत अज्ञान

(१६) उपपात और (१७) च्यवनद्वार

संख-मसंखा समये, गब्भतिरि विगल नारय, सुराय ।
मणुआ नियमा संखा, वण-णंता थावर असंखा ।।२३।।

एक समय में संख्याता और असंख्याता गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, नारकी और देवता उत्पन्न होते है । वनस्पति अनंत और स्थावर असंख्यात उत्पन्न होते है । मनुष्य नियम से संख्याता उत्पन्न होते है ।

यह सृष्टि अनादि काल से है और अनंतकाल तक रहनेवाली है । इस संसार में सतत जन्म-मरण चालू है । जीवों के जन्म-मरण का प्रमाण कितना भयानक है, इसका हमें खयाल यहाँ पर आता है । काल का केवली दृष्टि में जो अविभाज्य अंग ''समय'' है उसमें एक समय में संख्याता-असंख्याता और अनंत जीवों के जन्म-मरण होते है, ऐसे कितने भव हम करके आये होंगे, इस पर विचार करें तो जरुर वैराग्यवृद्धि होगी ।

उपपात (जन्म)...च्यवन (मरण)...(अेक समय में)

दर्शन		
दंडक संख्या	**दंडक के नाम**	**उपपात-च्यवन**
३	ग. तिर्यंच, द्विइन्द्रिय, तेइन्द्रिय	संख्याता
१५	चउरिन्द्रिय, नारकी, देवता	असंख्याता
१	ग. मनुष्य	संख्याता
१	वनस्पतिकाय	अनंता
४	पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय	असंख्याता

(१८) स्थिति द्वार.....

ति दिणगि गि पल्लाउ, नर तिरि सुर निरय सागर तित्तीसा ।
वंतर पल्लं जोइस, वरिस लक्खाहियं पलियं ।।२५।।

असंज्ञी मनुष्य असंख्याता उत्पन्न होते है, जैसे उपपात द्वार में वैसे ही च्यवन में भी संख्या के बारे में जानना ।

बावीस हजार, सात हजार, तीन हजार और दसहजार वर्षो कां उत्कृष्ट आयुष्य अनुक्रम से पृथ्वीकायादि का होता है ।

संज्ञी मनुष्य तो एक समय में संख्याताही उत्पन्न होते है, परंतु असंज्ञी मनुष्य एक समय में असंख्याता उत्पन्न होते है । जहाँ जितने जीवों का एक समय में जन्म होता है, उतने ही जीव मरण को प्राप्त करते हैं । अतः उपपात द्वार और च्यवन द्वार समान ही है ।

स्थिति याने एक गति में जीव का रहने का समय, यह समय दो प्रकार से होता है -

१) जघन्य :- जघन्य याने कम से कम समय ।

२) उत्कृष्ट :- उत्कृष्ट याने ज्यादा से ज्यादा समय ।

सब जीवों की स्थिति भिन्न भिन्न होती है, वह यहाँ पर विस्तारसे बताया है ।

उपरोक्त गाथा में पृथ्वीकायादि चार का उत्कृष्ट आयुष्य बताया है ।

पृथ्वीकाय -	२२ हजार वर्ष
अप्काय -	७ हजार वर्ष
वायुकाय -	३ हजार वर्ष
वनस्पतिकाय -	१० हजार वर्ष

ति दिणग्गि ति पल्लाउ, नर तिरि सुर निरय सागर तित्तीसा ।
वंतर पल्लं जोइस, वरिस लक्खाहियं पलियं ।।२५।।

तीन दिनों का अग्निकाय का आयुष्य होता है, और तीन पल्योपम के आयुष्यवाले गर्भज मनुष्य और गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय होते है । वैमानिक देवता और नारकीयों का उत्कृष्ट आयुष्य तैंतीस सागरोपम होता है । व्यंतर देवों का एक पल्योपम और ज्योतिषी का एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम का आयुष्य होता है । उत्कृष्ट आयुष्य की स्थिति बताते हुए आगे कहते है -

अग्निकाय का आयुष्य -	३ दिन
ग. मनुष्य और ग. तिर्यंच पंचेन्द्रिय -	३ पल्योपम
वैमानिक देव और नारकी -	३३ सागरोपम
व्यंतर देव -	१ पल्योपम
ज्योतिष देव -	१ पल्योपम से १ लाख वर्ष अधिक

असुराण अहिय अयरं, देसूण दु पल्लयं नव निकाये ।
बारस वासुण पणदिण, छम्मास उक्किट्ठ विगलाउ ।।२६।।

असुरकुमारों का आयुष्य एक सागरोपम के उपर पल्योपम का असंख्यातवां भाग अधिक होता है । शेष नवनिकाय का कुछ कम पल्योपम होता है । बारह वर्ष, उनपचास दिन एवं छ माह अनुक्रमे विकलेन्द्रिय का आयुष्य होता है ।

शेष दंडको के जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य बताते है -

असुरकुमार -	एक सागरोपम से अधिक पल्योपम का असंख्यतवा भाग
अन्य नवनिकाय के देवों का -	एक देश न्यून दो पल्योपम
द्विइन्द्रिय -	बारह वर्ष
तेइन्द्रिय -	४९ दिन
चउरिन्द्रिय -	६ मास

पुढवाइ दस पयाणं, अंतमुहुत्तं जहन्न आउठिइ ।
दससहस्स वरिस ठिइआ, भवणाहिव निरयवंतरिआ ।।२७।।

पृथ्वीकायादि दस पदों की जघन्य से आयुष्य स्थिति अंतर्मुहूर्त होती है । दस हजार आयुष्य स्थितिवाले भवनपति, नारकी और व्यंतर देव होते है । आयुष्य की उत्कृष्ट स्थिति जानने के बाद अब जघन्य स्थिति बताते है । पृथ्वीकायादि पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, ग. तिर्यंच पंचेन्द्रिय, ग. मनुष्य ये दस दंडक की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त होती है ।

भवनपति के दस दंडक, नारकी का एक दंडक और व्यंतर देवों का एक दंडक इन बारह दंडक की जघन्य स्थिति १० हजार सालकी होती है ।

जिनशासन के महाप्रभावक आचार्य भगवंत

(११) वृद्धवादीसूरि और सिद्धसेन दिवाकरसूरि

विद्याधर गच्छ में श्रीपादलिप्तसूरि के शिष्य स्कंदीलाचार्य के पास कुमुद नाम के विप्र ने वृद्धावस्था में दीक्षा ली उन्हे विद्या चढती नहीं थी इसलीये बडी आवाज में जोर-जोर से बोलकर रात्रि के वक्त याद करते थे, जिससे गुरु महाराज ने उसका निषेध किया कि रात्रि के वक्त ऊंची आवाज में बोलना नहीं इसलीये वो दिन में ऊंची आवाज में याद करने लगे तो श्रावको ने कहा कि, यह जोर-जोर से बोलकर पूरा दिन रट-रट करते हैं, तो ये क्या मुसल फुलायेंगे ? इन वचनो से वो बहुत शरमा गये फिर उन्होने सरस्वती देवी की आराधना की । इक्कीसवें उपवास के दिन सरस्वती देवी उन पर प्रसन्न हुई और वरदान दिया कि, ''सर्व विद्या का पारमामी होगा, तू जैसा कहेगा वैसा तुझे मैं करके दूंगी । '' इस तरह का सरस्वती वरदान देकर गयी उसके बाद उन्होने चौक में जाकर एक मुसल लाकर बीचोंबीच खडा किया और हाथ में पानी की अंजलि लेकर निम्न अनुसार बोला :

'' हे सरस्वती देवी ! हमारे जैसे जड भी यदि वादी जैसे विद्वान तेरे आशीर्वाद से हो सकते है तो यह मुसल फुला दे ।''

यह मंत्र पढकर उसने मुसल पर पानी की अंजलि छिडकी की तुरंत ही सरस्वती देवी ने उस मुसल को फुला दिया अर्थात वो नवपल्लवित बन गया यानि की उस सूखी लकडी पर भी तुरंत ही पत्ते, फूल, फल, डाली, तना एवं जडे सब बन गये । हूबहू (हरा झाड) देखकर सारे लोग बहुत विस्मित हु, यह बात चारो तरफ फैल गयी इससे उनका वादीपना सर्वत्र प्रसिद्धी पाया ।

ये वादी ऐसे तो विद्वान बने की उनके आगे कोई भी वादी वाद करने में समर्थ नहीं हो पाया, ऐसी उनकी प्रतिष्ठा चौतरफ जम गयी फिर गुरु ने भी ऊन्हें आचार्यपद दिया जिससे उसका नाम ''वृद्धवादीसूरि'' हुआ ।

उस समय उज्जैनी में विक्रमादित्य राज्य करता था, उसके राज्य में राज्यमान्य देवर्षि नामका विप्र था । उसकी देवश्री नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ सिद्धसेन नाम का पुत्र था, वो राज्य में बडा पंडित माना जाता इतना ही नहीं पर वो अपनी बुद्धि के बल से और मिथ्यात्व के उदय से इतना ज्यादा अभिमानी था की पूरे जगत को एक तिनके के समान मानता । सिद्धसेन अभिमान से ऐसा कहता की, ''जो कोई भी वादी मुझे वाद में जीत ले तो मैं उसका चेला बन जाऊगां'' ऐसी प्रतिज्ञा धारण करके वो सर्वत्र घूमता था, ऐसे में उसने वृद्धवादीसूरि की कीर्ति सुनी, इसलीये उन पर ईर्ष्या करते हुए उन्हें जीतने के लिये उनके सम्मुख चल कर गया । भरुच पास के गांव में उसे वृद्धवादीसूरि मिले, परस्पर बातचीत करते हुए सिद्धसेन ने वाद करने की मांग की । वृद्धवादी ने कहा की , वाद करने की मेरी मनाही नहीं है, पर यहां साक्षी और न्याय करने वाला कौन है ? कोई नहीं, इससे अपने में ''जय पराजय'' का निर्णय कौन करेगा ? अभिमान से भरे हुए सिद्धसेन ने कहा कि, ये वन के गोपाल (ग्वाले) हमारे साक्षी है, हम वाद करतें है । वृद्धवादी ने कहा कि, जब ऐसा ही है तो प्रथम पूर्व पक्ष तुम ही उठाओ। फिर सिद्धसेन ने तुरंत ही तर्क से कठोर वाक्य वाले आडे-तेडे कितने ही पदो का उच्चारण किया । इससे ग्वाले कंटाल

गये और बोल उठे की, ''अरे ! यह तो ऐसे ही बडबड कर रहा है ? कुछ समझ में तो आ नहीं रहा है, यह तो फालतू में भैंसो के जैसे चिल्ला रहा है, इसलीये धिक्कार है इसे'' । फिर वृद्धवादी की ओर देख ग्वाले बोले, ''अरे भाई वृद्ध, कानो को मजा आये ऐसा तू कुछ जानता हो तो बोल न ? सुने तो सही ! तब वृद्धवादीसूरि तालियाँ बजाते और नाचते हुए बोले कि,

नवी मारिये नवि चोरिये
परदारा गमन निवारिये
थोवं थोवं दाइये तो
सग्ग रग रग जाईये (१)
घऊं गोरस गोरडी
गज गुणियल ने गान
छ गग्गा जो इहां मळे तो
सग्गहनुं शुं काम (२)
चूडो चमरी चूनडी
चोळी चरणो चीर
छ चच्चे सोहे सदा
सती तणुं शरीर (३)

वृद्धवादी का ऐसा लुभावना गायन सुन ग्वाले बहुत खुश हुए और सारे साथ में नाचने तथा तालियां बजाते हुए गायन में सूर मिलाने लगे और गायन पूर्ण होने के बाद बिना पूछे सब बोल उठे की, ''इस बुजुर्ग वृद्ध ने इस जवान को जीता जीता जीता '' ऐसा कहकर तालियाँ बजाने लगे इससे सिद्धसेन तो ठंडा पड गया पर वृद्धवादी ने कहा कि, ''डरना मत, इसके पास में भरुच नगर में राज्यसभा है, वहां अनेक पंडित भी है, वहां हम वाद करेंगे, और उसमें जो होगा वो सच्चा । '' ऐसा कह कर भरुच गये, वहां राजसभा में भी वृद्धवादी ही जीते और सिद्धसेन हारा, जिससे सत्य प्रतिज्ञावाले सिद्धसेन ने वृद्धवादी के पास जैन दीक्षा अंगीकार की, योग्यता होने के कारण उसे ''दिवाकर'' नाम की उपाधि मिली. इससे गुरु ने उसे आचार्यपद समर्पित किया ।

फिर वे नेक जीवो को प्रतिबोध देते उज्जैन आये इसलीये नगर में तो ''सर्वज्ञपुत्र है '' ऐसी घोषणा होने लगी इससे विक्रमादित्य ने उसका सर्वज्ञपन देखने पास आकर मन से ही नमस्कार किया । सिद्धसेनसूरि ने ज्ञान से पाकर, देखकर तुरंत ही उसे सब सुने वैसे ''धर्मलोभ'' दिया । विक्रमादित्य बोले, ''नमस्कार किये बिना ''धर्मलाभ'' क्यो कह रहे हो ? '' गुरु ने कहा कि, ''तुमने मन में नमस्कार किया, इसलीये मैने ''धर्मलाभ'' दिया है, हमारा धर्मलाभ ऐसे ही नहीं है तो सुन ।''

''दीर्घायु होओ '' ऐसा आशीर्वाद दे वो कुछ योग्य लगता नहीं है, क्योंकि वो तो नारकी के जंतुओ में भी है । तुम्हें बहुत पुत्र हो ऐसा कहे वो भी ठीक नहीं क्योंकि वो तो मुर्गियो को भी बहुत बच्चे होते है, इससे उसे कौनसा सुख है ? इसलीये सर्व सुखो को देने वाला यह ''धर्मलाभ'' ही तुम्हें सुखदायक होगा ।'' इससे राजा ने सर्वज्ञपन कबूल किया और तुष्टमान होकर उन्हें एक करोड सोना मुहरे भेंट की पर निस्पृहपन से उन्होंने वो द्रव्य

अंगीकार नहीं किया, इससे श्रावको ने जीर्णोद्धार या लोगों को कर्ज में से मुक्त करने में उस धन का उपयोग किया ।

सिद्धसेन दिवाकर वहां से विचरते हुए चित्तोड गये । वहां एक स्तंभ था, उसमें पूर्व के आचार-आज्ञा वाली पुस्तके छुपायी हुई थी, वो पुस्तके पढने की उन्हें इच्छा हुई; पर वो स्तंभ ऐसा था की जिसे अग्नि, पाणी, शस्त्र (टांकण आदि) कोई भी भेद नहीं सकते थे, ऐसा उसका आवरण औषधि से व्रजमय बनाया हुआ था, इससे वहां बैठकर सुगंध लेकर उन औषधियो को पहचाना; उसे प्रतिऔषधियो (विरोधी औषधियों) से नवपल्लवित करके वो स्तंभ खोला, उसमें बहुत से चमत्कारिक ग्रंथ थे, उसमें से एक पहली पुस्तक हाथ में लेकर पढना शुरु किया, उसमें पहले पन्ने पर दो विद्याये थी, उसमें से प्रथम सरसव विद्या, सरसो पानी में डालने से घोडे उत्पन्न किये जा सकते थे, ऐसी विद्या देखी । दूसरी चूर्णयोग करने से सुवर्ण बनाने की क्रिया थी । ये दोनों विद्याये पढने के बाद आगे पढ रहे थे कि शासन देवी ने निषेध किया और पुस्तक हाथ में से छिन लिया, इतना ही नहीं पर वो स्तंभ पुनः वज्रमय बनकर बंद हो गया, इससे उदास होकर उन्होंने वहां से विहार किया, आगे चलते हुए वे कुमारपुर आये, वहां के देवपाल नाम के राजा ने नमस्कार कर प्रार्थना की कि '' मेरे सीमावर्ती राजा मेरा राज्य ले लेना चाहते है (युद्ध करने वाले है) इसलीये आप मेरे उपर कृपा करो तो मेरा राज्य स्थिर रहे ।'' गुरु महाराज ने हाँ कहा । युद्ध हुआ, गुरु के आशीर्वाद से देवपाल जीता और राज्य स्थिर रहा, राजा जैन बन गया, गुरु को राज-सन्मान बहुत मिला, राजा की प्रार्थना से बंदीजनो की प्रशंसा पाती हुए पालखी में बैठकर गुरु दरबार में आने लगे, इतना ही नहीं पर ऐसे कारणो से वे प्रमाद में पडे । यह बात वृद्धावादीसूरि को सुनने में आयी जिससे उन्हें प्रतिबोध देने वे वहां आये दरबार में जाते पालखी में सिद्धसेन को बैठा हुआ देख, पालखी उठा रहे एक भाई को सरकाकर उसके बदले में स्वयं ही यानि वृद्धवादी ने पालखी का एक दंड उठाया, परंतु स्वयं वृद्ध होने से पालखी की चाल में बदल हो गया, पालखी धक्के खाती आडी-तेडी होने लगी इससे अंदर बैठे हुए सिद्धसेनसूरि मद में आकर बोल उठे कि -

भूरि भार भरा कांतः
स्कंधाः किं तव बाधति

यानि की बहुत भार बढ जाने से पीडित होकर क्या तेरे यह स्कंध (कंधे) दुःख रहे है ?

सिद्धसेन को ''बाधते'' बोलना चाहिये वहां बाधति बोले वो व्याकरण दोष होने से वृद्धवादी बोले कि,

तथा न बाधते स्कंधो
यथा बाधति बाधते

यानि की ''उतना कंधा नहीं दुःख रहा है की जितना बाधति प्रयोग सुनने पर मन में दुःख होता है ।''

यह सुन सिद्धसेनसूरि मन में चमक उठे और विचार किया कि मेरे गुरु के सिवाय मेरी वाणी में ऐसा दूषण बताने वाला कोई नहीं है, इसलीये ये कहीं मेरे गुरु तो नहीं है ? ऐसा सोच तुरंत ही पालखी में से उतर पडे, गुरु को पहचान उनके पैरो में पडे, और अपना प्रमाद छोडकर शुद्ध होकर राजा को पुछ गुरु के साथ विचरण करने लगे यानि पहले के जैसे संयम बराबर पालने लगे ।

काल करके वृद्धवादीसूरि स्वर्ग में गये फिर एक बार ''मग्गदयाणं'' वगैरह प्राकृत पाठ बोलते हुए अन्य

दर्शनवालो को हंसी उडाते देख वे लज्जित हुए । बाल्यावस्था से ही उन्हें संस्कृत का अभ्यास था और उपर से कर्मदोष से अभिमान में आकर सिद्धसेन ने नवकार पद का ''नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यः'' ऐसा एक पद संस्कृत में बना दिया फिर सारी सिद्धांतो को संस्कृत में करने का विचार किया तब संघ ने मिलकर कह दिया कि -

''बाल, स्त्री, मंद बुद्धिवाले, मूर्ख जो चारित्र लेने की इच्छा रखते हो, वे प्राकृत हो तो सरलता से सीख सकते है, उन की दया हेतु तत्व के जानकारो ने पहले से ही सिद्धांतो को प्राकृत लोकभाषा में किया है क्या तुम उनसे ज्यादा बुद्धिमान हो की प्राकृत में बनाये हुए सिद्धांतो को संस्कृत में बदल रहे हो ? ज्यादा बुद्धिवालो के लिये चौदह पूर्व क्या संस्कृत में नहीं है ? यह तुमने जिन आज्ञा के विरुद्ध किया उससे तुम्हें **'' पारांचित''** नाम का प्रायश्चित आया, तुम्हें पारांचित आलोचना के लिये बारह वर्ष तक गच्छ के बाहर रखने में आया है । फिर संघ की आज्ञानुसार साधु का वेश गुप्तरख, अवधूत बन, मौन धारणकर संयम सहित वे विचरण करने लगे ।

संघ बाहर के सातवें वर्ष में उज्जैनी के महाकालेश्वर मंदिर के अंदर आकर वहां शिवलिंग के सम्मुख पैर करके सोये, वंदन, नमन नहीं कर रहे थे, इससे पूजारी वगैरह लोगो ने उनका तिरस्कार किया और उठाने की मेहनत की पर वो उठे ही नहीं, इससे ''यह भी एक कुतुहल है '' ऐसा सोच विक्रमादित्य राजा देखने आये और बोले कि ''अरे अवधूत ! इस शिवलिंग को तू क्यों नमन नहीं कर रहा है ।'' उसने कहा कि ''ज्वर से पीडित आदमी जैसे मोदक नहीं खा सकता है, वैसे यह शिवलिंग मेरी की हुई स्तवना को सह ही नहीं पायेगा । '' राजा ने कहा ''अरे जटिल ! यह तू क्या बोल रहा है ? स्तुति कर, देखते है कैसे सहन नहीं हो सकती है ?'' फिर सिद्धसेन ने वहां ''वीर द्वात्रिंशिका'' की रचना करके स्तवना की, उसका प्रथम काव्य निम्न अनुसार है -

स्ययंभुवं भूत सहस्त्र नैत्र मनेक मेकाक्षरभावलिंगम्
अव्यक्त म व्याहतविश्वलोका मवादि मध्यांतम पुण्यपापं ।

ऐसे बत्तीस काव्य कर, फिर पार्श्वनाथ की स्तुति करते हुए कल्याण मंदिर का ग्यारहवां श्लोक रचते ही शिवलिंग फटा और उसमें से बिजली के जैसा चमकता देदीप्यमान अवंति पार्श्वनाथ स्वामी का बिंब प्रकट हुआ । यह देखकर विक्रम आश्चर्य में पड गये और पूछने लगे कि, यह मूर्ति किसने भरायी है ? गुरु ने कहा कि, यहां पहले भद्रा नाम की सेठानी का अवंति सुकुमार नाम का श्रीमंत पुत्र था, उसकी बत्तीस पत्नियां थी, एक बार अपने महल की खिडकी के पास वो खडा था तब आर्यसुहस्तिसूरि के मुख से नलिनी गुल्म नामक विमान का वर्णन सुन जातिस्मरण पाकर उसने गुरु को पूछा कि, उस विमान से आप क्या आये हो ? गुरु ने कहा कि, ऐसा नहीं है, पर सर्वज्ञ के वाक्यो से (सूत्रो से) हम यह सब जानते है । तब फिर से उसने पूछा कि, यह विमान वापस कैसे मिलता है ? ''चारित्र से मिले'' ऐसा गुरु ने कहा, इससे उसने दीक्षा ली पर सदा तप करने की शक्ति नहीं थी तथा नलिनी गुल्म विमान में जाने की तत्परता के लिये, गुरु की आज्ञा लेकर श्मशानभूमि पर उसने अनशन किया । तब पूर्वभव की अपमानित स्त्री मरकर वहां सियारनी बनी थी, उसे उन्हें देखकर बैरभाव उत्पन्न होने से उसने - अवंति सकुिमाल के शरीर का शरीर रात्रि के तीन प्रहर तक भक्षण किया । अति वेदना सहन करते हुए भी शुभभाव में चौथे प्रहर में काल करके वो नलिनी गुल्म विमान में देवता हुआ । यह बात जानते ही वैराग्य भाव से उसकी माता ने एक बहु गर्भवती थी उसे घर रख दूसरी इक्कत्तीस बहुओ के साथ दीक्षा ली, घर रही बहु को बेटा हुआ ।

उसने अपने पिता के नाम की यादगार हेतु उसी स्थान पर ''अवंति पार्श्वनाथ'' की प्रतिमा भरायी, बडा जिनमंदिर बनाकर उसमें स्थापना की, वो ही यह बिंब है पर कालांतर में विप्रो ने मिलकर उस प्रतिमा के उपर ही शिवलिंग की स्थापना कर दी थी, वो शिवलिंग मेरी की हुई स्तुति कैसे सहन कर सकता ? यह सब सुनकर विक्रम बहुत ही खुश हुआ और उस प्रतिमा की पूजा के लिये एक सौ गांव दिये फिर बोले कि, महाराज, मेढ़क का भक्षण करने वाले चतुर ऐसे सर्प बहुत है, पर धरती को धारण करनेवाला शेषनाग तो एक ही है, वैसे ही नाम के पंडित तो बहुत है पर तुम्हारे जैसा कोई नहीं।'' ऐसी प्रशंसा कर राजा अपने स्थान पर गये।

इस प्रकार से सिद्धसेन ने गये हुए तीर्थ को वापस प्राप्त करवाकर जैन शासन की बडी उन्नति करायी इससे बारह वर्ष की आलोचना में से सात वर्ष व्यतीत हुए थे और पांच वर्ष बाकी रहे थे, तो भी उन्हें श्रीसंघ ने मिलकर वापस गच्छ में लिया, इसलीये फिर से आचार्यपद पाया, वहां से कुवादीरुप तिमिर का नारा करने में दिवाकर समान ''सिद्धसेन दिवाकर सूरि'' कहलाये।

वे वहां से विहार करते हुए ओंकारपुर आये, वहां मिथ्यात्वीओ का बहुत जोर था, वे वहां जैन चैत्य बनाने नहीं दे रहे थे, इससे उन्होंने विक्रमराजा को समझाकर वहां जैन चैत्य बनवाया वहां से दक्षिण की ओर विहार करते हुए प्रतिष्ठानपुर पहुंचे, फिर अपनी आयुष्य पूर्ण होने आयी है, ऐसा जान अनशन करके स्वर्ग में सिधारे।

जिनशासन के महाप्रभावक आचार्य भगवंत

(१२) श्रीमानतुंगसूरि

भोजराजा की धारा नगरी में बाण और मयूर नाम के साला-बहेनोई दो पंडित रहते थे । दोनों जन अपनी पंडिताई के लिये परस्पर ईर्ष्या रखते थे । दोनो ने अपनी-अपनी पंडिताई से राज्यसभा में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, दोनों राज्यमान पंडित थे । एक बार बाण कवि अपनी बहन को मिलने के लिये उसके (मयूर के) घर गया । उसकी अच्छी देखभाल कर रात्रि में आंगन में बिस्तर बिछाकर वहाँ सुलाया ।

घर में मयूर और उसकी पत्नी (बाण की बहन) सोये, पर दंपति में रात्रि के वक्त किसी बात में तकरार हो गयी, वो सारी तकरार बाहर सोये बाण ने सुन ली । मयूर अपनी पत्नी को बहुत-बहुत समझाता है पर वो स्त्री मानती नहीं है , फिर सुबह होने को आने पर मयूर उसे मनाने एक कविता बोलने लगा, उसमें से तीन पद जब उसको सुनाये तब बाहर सोये हुए बाण से रहा नहीं गया, इससे चौथा पद उसने पूर्ण किया यह सुन उसकी बहन को बहुत चिढ आयी । अपने मीठे कलह में अवांछित रुप से भाई की दखलगिरि होने से उसने ऐसा श्रॉप दिया की, जा तुझे ''कुष्ठि'' कोढरोग होगा, वो स्त्री सती थी, इससे उसे (बाणकवि) को तुरंत ही कोढरोग हो गया ।

प्रातः काल राजसभा में मयूर कवि पहले से बैठा था, उसने जब बाण कवि आया तब कहा कि ''आओ, आओ, कोढवाला बाण आया '' मयूर के ऐसे वचन सुन राजा भोज बोले कि, इसे कोढ किस तरह से हो गया ? इसलीये मयूर ने सारी बात वहां बतायी, इतना ही नहीं पर प्रत्यक्ष बाण के अंगो पर के कोढ के सफेद दाग बताये, इससे भोजराजा ने ऐसा हुक्म दिया कि, जब तक उसे कोढ मिटता नहीं है तब तक उसे राजसभा में आने की, उसी तरह नगर में रहने की सख्त मनाई फरमायी । ऐसे कारण से बाण कवि बहुत ही लज्जित हुआ और अभिमान में आकर तुरंत ही वहां से उठकर नगर के बाहर चला गया ।

नगर के बाहर आमने-सामने दो बांस के स्तंभ गाडकर, बीच में ऊंची डोरी बांधी, उसमें एक छः बंधनवाला झींका (झूले जैसा) बांधा, उसमें वो खुद (बाण कवि) बैठा और नीचे अग्निकुंड जलाया, सूर्यदेवता की स्तवना संबंधी एक - एक काव्य रचकर बोलते हुए एक -एक डोरी झींके की अपने हाथ से ही काटते हुए पांच काव्य बोलकर पांच डोरियां काट डाली । अंतिम डोरी को छट्ठे काव्य के बोलने के अंत में जब काटना प्रारंभ किया, उस वक्त देखने को उमडे खूब सारे लोगो की भीड के बीच में सूर्यदेवता ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया, इतना ही नहीं, पर उसका कोढ दूर करके सुवर्ण कांति जैसा शरीर कर दिया ।

ऐसी घटना घटने से दूसरे दिन राजा ने उसे बहुत ठाठ-बाट से बैंड-बाजे के साथ दरबार में बुलाया, जब आया तब उसे बहनोई (मयूर) से कहा कि, ''काले मुंह के कौवे के जैसे क्षुद्र पंखी ! गरुड के जैसे मेरे आगे तेरी क्या शक्ति है ? यदि शक्ति हो तो दिखा न ? बैठा क्यूं रहा है ? ''

उस वक्त मयूर बोला कि है, है, है, हमारे में भी ऐसी शक्ति है । वैसे तो निरोगी को किसी औषधि की

जरुरत नहीं, फिर भी तेरे वचनो को झूठा साबित करने में मेरी शक्ति इस सभा के समक्ष बता दुं वो तू तेरी आंखे खोलकर देख । ऐसा कहकर तुरंत ही उसने एक छूरी मंगायी अपने हाथ-पैर की उंगलियाँ अपने हाथो से ही छेद डाली ओर चंडी देवी की स्तवना करते, काव्य रचकर बोलते हुए, कविता के छठ्ठे ही अक्षर का उच्चारण करने पर देवी प्रसन्न होकर आकर खडी रही । वो बोली कि, ''महा सात्विक? मांग, मैं तुझ पर प्रसन्न हुं , तू जो मांगे वो दूं ।'' उसने तुंरत ही देवी के पास से वर मांग अपनी काटी हुई उंगलियाँ ठीक करायी । इतना ही नहीं पर प्रसन्न हुई देवी ने उसका शरीर वज्रमय-दृढ कर दिया । यह चमत्कार देख पूरी सभा आश्चर्यचकित हो गयी, इससे राजा ने उसका बहुत ही सन्मान किया इतना ही नहीं पर उसकी वार्षिक आय में भी बहुत बढोतरी कर दी ।

ऐसे अवसर पर जैनधर्म के उपर द्वेष रखने वाले किसी विप्र ने सभा के बीच में बात चलायी कि, जैनधर्म में ऐसे चमत्कारिक कविता रचने वाले पंडित कोई देखने में आये नहीं है । यदि ऐसी चमत्कारिक कविता रचने कोई भी अपनी होशियारी दिखाये तो ठीक ही है, परंतु यदि ऐसे कोई भी प्रभावक उनमें नहीं हो तो फिर व्यर्थ में क्या करने हमारे इस आर्य देश में उन्हें आने-जाने देना चाहिये ? सभा में बैठे हुओ में से ज्यादातर जैन के द्वेषी होने से सभी का इस बार पर ध्यान खींचा, जिससे राजा ने तुरंत ही अपने सेवको को भेज दूर देश में विचरण कर रहे श्रीमानतुंगाचार्य नामक जैनाचार्य को रुबरु बुलवाया और पूछा कि, तुम्हारें में कोई भी चमत्कारिक कविताये रचने में प्रवीण हो तो हमें बतलाओ, यदि कोई भी तुम्हारे में ऐसा विद्वान नहीं हो तो तुम्हारे लिये हमें कुछ भी सोचना पडेगा । मानतुंगाचार्य ने कहा कि, ओह, इसमें क्या है ? ऐसे चमत्कार तो मैं बहुत जानता हूं । राजा ने कहा कि, ''तो अभी ही बताओ'' श्रीमानतुंगाचार्य ने हाँ कहा और कहा, ''मुझे एक कमरे में बंद करो और मेरे शरीर को चारो ओर लोहे की जंजीर से बांधो, हाथ-पैरो को बेडियो से बांधो, दरवाजा बंद करके उसे चुम्मालीस ताले लगाओ । मैं स्तोत्र रचता जाऊंगा और बेडीयाँ, जंजीर और ताले टूटते जायेंगे ओर मैं कमरे के बाहर आ जाऊंगा ।

राजा ने तत्कालिक रुप से इस तरह का प्रबंध करवाकर श्रीमानतुंगाचार्य को एक कमरे में बैठा जंजीरो वगैरह से बांध, दरवाजे बंदकर चुम्मालीस ताले मारे ।

श्रीमानतुंगाचार्य ने प्रभु आदेश्वर की प्रार्थना की, हृदय में श्रीआदेश्वर तीर्थंकर को स्थापित किया और एक के बाद एक भक्तामर स्तोत्र की गाथा अपनी अनोखी कवित्व शक्ति से बनाते गये ओर सब को सुनाते गये । जैसे - जैसे गाथा बोलते गये वैसे-वैसे जंजीर, बेडियाँ और ताले टूटते गये और अंतिम गाथा बोल महाराजश्री एकदम बंधनमुक्त होकर कमरे के बाहर आ गये । राजा, राज्यसभा और अनेक लोगो ने यह चमत्कार देखा और ऐसा चमत्कार देख जैनशासन की बहुत उन्नति हुई । इतना ही नहीं पर राजा, उसी तरह सभा के ज्यादातर लोग जो जैनो के द्वेषी है वो भी भद्रिक हुए और अंत में जैन धर्म का बोध पाया । जो चुम्मालीस माथाओ की उन्होंने रचना की वो आज ''भक्तामर स्तोत्र'' के नाम से सुप्रसिद्ध है । दिगम्बर तथा स्थानकवासी लोग उसमें चार गाथायें जोडकर उसकी ४८ गाथाओ का पाठ भी करते है ।

गुणस्थान क्रमारोह

आधार ग्रंथ - गुणस्थान क्रमारोह पू.आ. रत्नशेखरसूरि

क्षपक श्रेणी

उपशम श्रेणी का स्वरुप बताया अब क्षपक श्रेणी का स्वरुप संक्षेप में बताते है ।

अतो वक्ष्येसमासेन, क्षपक श्रेणी लक्षणम् ।
योगी कर्म्मक्षयङ्कत्तु, यामारुह्य प्रवर्त्तते ।। ४७ ।।

उपशम श्रेणी में साधक मोहनीय कर्म की प्रकृतियों को उपशमित करता है, परंतु यहाँ क्षपकश्रेणी में साधक कर्म प्रकृतियों को खपाता है । क्षपक श्रेणी पर आरुढ साधक योगी कर्मक्षय करने को प्रवृत्त होता है । योद्धा जिस तरह युद्ध करने और जितने के लिये तैयार होता है, वैसे हि योगी कर्मसत्ता के साथ युद्ध करने और कर्म विजेता बनने के लिये सज्ज होता है । अब वह किस तरह कर्मक्षय करता है यह बताते है -

अनिबद्धायुषः प्रान्त्य दीहिनोलघुकर्मणः ।
असंयतगुणस्थाने नरकायुः क्षयंव्रजेत् ।। ४८ ।।

जिसने परभव का आयुष्य नहीं बांधा अथवा जो चरमशरीरी है, थोडे कर्मवाले, हळुकर्मवाले जीव है वे चौथे गुणस्थान में नरक के आयुष्य का क्षय करते है ।

तिर्यगायुः क्षयंयाति गुणस्थाने तु पश्चमे ।
सप्तमेत्रिदशायुश्च दृग्मोहस्यापिसप्तकम् ।। ४९ ।।

पांचवे गुणस्थान में तिर्यंचायु का क्षय होता है । सातवें गुणस्थान में देवायु का एवं मोहनीय की सात प्रकृतियों का क्षय होता है । तब साधक क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है ।

दशैताः प्रकृतिः साधुः क्षयंनीत्वा विशुद्ध घीः ।
धर्म्म ध्याने कृताभ्यासः प्राप्नोति स्थानमष्टमम् ।।५०।।

जो शुद्धबुद्धि वाला साधु पूर्वोक्त दस प्रकृतियों का क्षय कर जिसने धर्मध्यान का सुंदर अभ्यास किया है ऐसा वह साधु आठवा गुणस्थान प्राप्त करता है । इससे वह १४८ कर्मप्रकृतियों में से पूर्वोक्त नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु ये तीन आयुष्य एवं अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय और सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय रुपी सब दस प्रकृतियोंका क्षय करने से शेष रही हुई १३८ प्रकृतियों की सत्ता रखता हुआ जीव आठवे गुणस्थान को प्राप्त करता है ।

आठवे गुणस्थान में शुक्लस्थान

आठवे गुणस्थान में पहुंचा हुआ साधु धर्मध्यान के अभ्यास से आगे बढते हुए शुक्लध्यान में प्रवेश करता है, यह बताते हुए कहते है -

तत्राष्टमे गुणस्थाने शुक्लसध्यानमादिमम् ।
ध्यातुमाक्रमतेसाधु राद्यसंहननान्वितः ।।५१।।

क्षपक श्रेणीवाला साधु इस आठवे गुणस्थान में शुक्लध्यान के प्रथम नींवरुप सपृथत्कसवितर्क से प्रविचार नामक ध्यान का प्रारंभ करता है । यह साधु पहले वज्रऋषभनाराच संघयणवाला होता है । मजबूत संघयण के बिना उच्च कोटि के शुक्लध्यान की संभावना ही कैसे हो सकती है ?

अब ध्याता का स्वरुप वर्णन करते है -

निःप्रकम्पं विधायाथ दृढम्पर्यङ्कमासनम् ।
नासग्रे दत्तसन्नेत्रः किश्चिदुन्मिलिते क्षणः ।।५२।।
विकल्पवागुरा जालाद् दरोत्सारित मानसः ।
संसारच्छेदनोत्साहो योगीन्द्रोध्यातुमर्हति ।।५३।।

शुक्लध्यान का प्रारंभ करते ही योगी महात्मा क्षपक श्रेणीवाले मुनी भगवंत व्यवहार का आश्रय कर ध्यान करने योग्य होता है -

वे क्या करते है यह बताते है -

- वे पर्यंकासन दृढ करते है, मजबूत करते है, मजूबत करते है अर्थात् आसन निश्चल और निष्कंप होता है । ''आसनजय'' यही ध्यान की प्रथम सफलता है, आहार, आसन, निद्रा एवं शरीर इन चार को जो जीतता है वही ध्यान कर सकता है ।

- पर्यंकासन का स्वरुप बताते हुए कहते है की - दोनो जंघाओं पर दोनो पैर स्थापन करना उसके उपर अपने दोनो हाथ रखने से यह आसन होता है । इसे कोई सिद्धासन भी कहते है, दृष्टि नासिका पर स्थिर रखनी होती है ।

- नासिकाके अग्र भाग पर दृष्टि स्थिर रखना ही ध्यान का शुद्धता है ।

- नेत्र कुछ बंद और कुछ खुले होते है ।

- संसारी कृत्यों के जाल से जिसने अपनी चित्तवृत्ति दूर की है ऐसा सब विकल्पों के जाल से मुक्त साधक होता है ।

- अपेक्षा से कहा जाता है की संसार के कार्यों से शुद्ध ध्यान संभवित नहीं, एक बार निद्रा लेना, मूर्च्छा विकलता अच्छी परंतु आर्तरौद्र ध्यान और गलत लेश्यावाली चित्तवृत्ति अच्छी नहीं ।

- ध्यान में आगे बढता मुनि संसार, छेदन, भवनाश के लिये ही उद्दमवंत होता है ।

प्राणायाम स्वरुप

श्वासोश्वास का नियमन आध्यात्मिक विश्व में विशिष्ट स्थान रखता है । श्वासोश्वास जीवन के प्राण है । इसीलिये उसका नियमन ''प्राणायाम'' के नामसे पहचाना जाता है ।

अपान द्वार मार्गेण निस्सरंन्तं यथेच्छाया ।
निरुन्ध्योर्ध्व प्रचाराप्तिम्प्रापयत्य निलंमुनिः ।।५४।।

साधु मुनिराज वायु की प्राप्ति दशम द्वार गोचर करता है । वायु निकालने के मार्ग से अपनी इच्छा से निर्गमीत (वायुको) की मूलबन्धन युक्ति से अटकाता है, मूलबन्धन विधि बताते हुए कहते है की - 'अेडीसे अपानद्वार को दबाकर वायु को उपर खिंच लेना उसे मूलबन्धन कहते है' ।

पूरक प्राणायाम

द्वादशांगुल पर्यन्तं समाकृष्य समीरणम् ।
पूरयत्यतियत्नेन पूरक ध्यानयोगतः ।।५५।।

मुनिराज पूरक ध्यान के योग से अत्यन्त प्रयत्न कर बारह अंगुल चारो ओर से हवा को खिंचकर शरीर की अंदर की सब नाडियों को पूर्ण भरता है वह पूरक प्राणायाम कहा जाता है ।

रेचक प्राणायम

निस्सार्यते ततोयत्नान्नाभि पद्मोदरात्छनैः ।
योगिना योग सामर्थ्या द्रेचकाख्यः प्रभंजनः ।।५६।।

पूरक प्राणायाम के बाद योगी साधक योगसमार्थ्य अथवा प्राणायाम के अभ्यास के बलपर वायु को नाभिकमलसे धीरे धीरे बहुत प्रयत्नपूर्वक बहार निकलाते है । उसे रेचक प्राणायाम कहते है ।

कुम्भक प्राणायम

कुंभवत् कुंभकंयोगी, सनंनाभिपड्कजे ।
कुंभकध्यानयोगेन, सुस्थिरं कुरुतेक्षणम् ।।५७।।

योगी कुम्भक नामक पवन को नाभि कमल से कुंभक नामक ध्यान द्वारा घट के आकार में स्थिर करता है, उसे कुंभक ध्यान, कुंभक प्राणायाम कहते है ।

पवनजय से मनोजय

इत्येवंगन्धवाहाना - माकु - ञ्चनविनिर्गमौ ।
संसाध्यनिश्चलंधत्ते चित्तेमेकाग्रचिंतने ।।५८।।

जहाँ मन है वहाँ पवन है और जहाँ पवन है वहाँ मन है । कहा जाता है की दूध और पानी एकदुजे में मिल जाते है, एक रुप हो जाते है वैसेही मन और पवन एकदुजे के साथ एकरुप होते है । एक के नाश से दुसरे का नाश होता है । मन के नाश से पवन का नाश होता है और मन के प्रवृत्ति से पवन की प्रवृत्ति होती है । उसी कारण मन और पवन के वेग का नाश करने से सब इंद्रियों पर जीत मिला सकते है । इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः उपरनिर्दिष्ट पूरक रेचक और कुंभक ध्यान के क्रम से पवन को अंदर लेना छोडना और संग्रह करना होता है, उससे पवन को साधन बनाने से चित्त एकाग्र होता है । मन समाधि में निश्चल होता है । इसीलिये कहा जाता है की पवन को जीतने से मनको जीता जाता है ।

भावो का प्राधान्य कहता है -

प्राणायाम : ऋम : प्रौढि रत्ररुढयैवदर्शिता ।
क्षपकस्य यतः श्रेण्यारोहे भावो हि कारणम् ।।५९।।

प्राणायाम का स्वरुप एव महत्व बताया परंतु आत्म उत्थान में क्षपक श्रेणी आरोहण में केवल भाव का प्राधान्य है । यहाँ पर प्राणायाम का जो स्वरुप बताया है, वह तो रुढि और प्रसिद्धि मात्र है । क्षपक श्रेणीवाले साधक को केवलज्ञान प्राप्ति में नियम से भाव की ही मुख्यता है, प्राणायाम केवल आडंबर मात्र है ।

शुक्लध्यान

सवितर्क सविचारं सपृथक्त्थ मुदाहृतम् ।
त्रियोगी योगिनः साधो राद्यंशुक्लं सुनिर्मलम् ।।६०।।

मन,वचन, काया के शुद्ध व्यापरवाले साधु को प्रथम शुक्लध्यान कहा है । यह शुक्लध्यान कैसा है ? यह बताते हुए कहते है की वह सवितर्क है याने विविध प्रकार के तर्कों से युक्त है । उसका आगे नाम सविचार है अर्थात् यह ध्यान अनेक प्रकार के विचारों से युक्त है । इस शुक्लध्यान का तिसरा विशेष 'सपृथकत्व' है । जिसमें आत्मा की अलग विचारणा है । इन तीन विशेषणोंसे युक्त शुक्लध्यान तीन योगवाले (शुद्ध) साधु को ही होता है ।

श्रुत चिन्तावितर्कस्यात् , विचारः संश्रमोमतः ।
पृथक्त्वं स्यादनेकत्वं, भवत्येतत्यात्मकम् ।। ६१।।

पहले तीन विशेषणों से युक्त शुक्लध्यान बताया अब वे तीन विशेषणों का स्वरुप बताते है । श्रुतचिंता याने सिर्फ सूत्र का ही विचार वितर्क कहलाता है । सूत्र के शब्द और अर्थका परस्पर योग करना वह संक्रम कहलाता है । द्रव्य,गुण, पर्याय के विचारों से पृथक जानना वह पृथकत्व है ।

सवितर्क स्वरूप

स्वशुद्धात्मानुभुत्यात्मा भावश्रुतावलंबनात् ।
अन्तर्जलल्पोवितर्कः स्यात् , यास्मिस्त त्सवितर्कजम् ।।६२।।

जिस ध्यान में अंतरंग विचारणारुप ध्वनि होती है, वह सवितर्क ध्यान है, वह किससे होती है ? ध्यान से ही होती है । अपने निर्मल अंतरंग आत्मभाव का अनुभव करानेवाले आगम का अवलंबन करने से होता है, उसे 'सवितर्कध्यान' कहते है ।

सविचार स्वरुप

अर्थादर्थान्तरेशब्दात् शब्दान्तरे च संक्रमः ।
योगाद्योगान्तरे यत्र, सविचारं तदुच्यते ।।६३।।

जिस ध्यान में पहले बताया हुआ वितर्क विचारणारुप अर्थ उसे अर्थांतर में संक्रमित करना है एवं शब्द को शब्दांतर में संक्रमित करे उसी तरह योग को योगांतर में संक्रमित करे ऐसे ध्यान को सविचार संक्रम कहते है ।

सपृथकत्व स्वरुप

द्रव्याद्द्रव्यांतरं याति, गुणाद्याति गुणान्तरम् ।
पर्यायादन्य पर्यायं, सपृथक्त्वंभवत्यतः ।।६४।।

जो ध्यान में पूर्वोक्त वितर्क सविचार अर्थ, वर्ण, योगांतर में संक्रमित करता है, अथवा गुण को गुणांतर में अथवा पर्याय को पर्यायांतर में प्राप्त करता है, उसे सपृथक्त्व ध्यान कहते है । परंतु गुण साथमें ही उत्पन्न होता है उसे कहते है, जिस तरह सुवर्ण में पीतवर्ण और क्रम से द्रव्य में जो उत्पन्न होता है वह पयार्य है । जिस तरह अंगूठी, मुकूट हार आदि सब सुवर्णद्रव्य के पर्याय है । ये जो पूर्व बताये वे द्रव्य, गुण उसके पर्यायों के विचारों से जो पृथक्त्व बुद्धि होती है, जिस ध्यान में उसे पृथक-बुद्धि होती है ऐसे ध्यान को पृथक्त्व जानना ।

अनुष्ठान

आत्मा का सच्चा लक्ष परमात्म पद की प्राप्ति होना चाहिये । सर्व धर्म मान्य पुरुषार्थ में भी चार प्रकार के पुरुषार्ध बताने के पश्चात प्रथम दो पुरुषार्थ को साधन कहा और साध्य के रुप में दूसरे तीसरे पुरुषार्थ की बात बताई । पर सचमुच तो प्रथम तीनों पुरुषार्थ साधन है साध्य तो एक मात्र मोक्ष ही है । ये चार प्रकार के पुरुषार्थ निम्नानुसार है - १) अर्थ पुरुषार्थ २) काम पुरुषार्थ ३) धर्म पुरुषार्थ ४) मोक्ष पुरुषार्थ ।

जीवन जीने के लिये संसारी व्यक्ति अर्थ और काम पुरुषार्थ करें पर इन दोनों पुरुषार्थ के उपर भी लगाम तो धर्म की ही हो । धर्म की लगाम बगैर जब जब भी अर्थ और काम पुरुषार्थ करने में आते हैं, तब तब भारी अनर्थ का सर्जन होता है । आज के युग में बन रहे प्रसंग उसके साक्षी हैं । सभी प्रकार के अनर्थो में भी आत्मा को सर्वथा और सदा के लिये मुक्त करने वाला एक ही पुरुषार्थ मोक्ष पुरुषार्थ है । इस मोक्ष को पाने के लिये ही अनुष्ठानो को जानने के लिये इनका अभ्यास करें ।

''सुख पाने के हेतु से की गई प्रत्येक धार्मिक क्रिया अनुष्ठान कहलाती है।'' इन अनुष्ठान के चार और पाँच प्रकार अलग अलग रुप से किये गये हैं ।

अनुष्ठान के चार प्रकार

यशोविजयजी महोपाध्याय कहते हैं -

अनुष्ठान वो चार हैं, प्रीति, भक्ति और वचन असंग रे ।

अनुष्ठान के चार प्रकार हैं - १) प्रीति अनुष्ठान २) भक्ति अनुष्ठान ३) वचन अनुष्ठान ४) असंग अनुष्ठान ।

जिसमें अधिक प्रयत्न हो..... जिससे करने वाले का हितकारी उदय हो ऐसी प्रीति रुचि हो, अन्य कार्य त्याग करके जो क्रिया को एक निष्ठा से करे वह **''प्रीति अनुष्ठान''** कहलाता है ।

विशेष गौरव (महत्व) के योग से बुद्धिमान पुरुषार्थ की अत्यंत विशेष योगवाली क्रिया वह **''भक्ति अनुष्ठान''** कहलाता है ।

पत्नी प्रिय है..... माता हितकारी है । दोनों के पालन पोषण का कार्य समान है.... फिर भी आंतरिक भाव में दोनों में भिन्नता है । पत्नी का कार्य प्रीति से होता है, जबकि माता का कार्य भक्ति से होता है । यह प्रीति और भक्ति में फर्क है ।

सर्व धर्मआराधना में उचित रुप से आगम अनुसार क्रिया हो वह **वचनानुष्ठान** है ।

अत्यन्त अभ्यास से सत्पुरुषों की सहज सुंदर क्रिया हो वह **असंगानुष्ठान** है ।

जिस तरह दंड के योग से चक्र का भ्रमण होता है, फिर दंड के अभाव में भी सहजरुप से घूमता है, उसी तरह आगम में कहे अनुसार वर्तन करना वचन अनुष्ठान है, और पीछे से अति मनोहर जो आचरण आधार

बिना भी सहज रुप से होता है असंग अनुष्ठान है ।

प्रतिक्रमण, काउसग्ग, पच्चख्खाण ये प्रीति अनुष्ठान है ।

सामायिक, चउविसत्थो, वंदन ये भक्ति अनुष्ठान है ।

सम्यग् चारित्र वाले साधु को वचन अनुष्ठान है ।

अत्यंत उच्च कक्षा पर पहुँचे हुए साधु को असंग अनुष्ठान संभवित है ।

अनुष्ठान के पाँच प्रकार

महोपाध्याय यशोविजयजी महाराज अध्यात्मसार ग्रंथ में पाँच प्रकार के अनुष्ठान बताते है -

विषंगरो ऽ ननुष्ठानं तद्हेतुरमृतं परम् ।

गुरुसेवावाद्यनुष्ठान - मिति पंचविधं जगुः ।।

गुरुसेवादि अनुष्ठान आलोक परलोक सुख के आशय भेद से पाँच प्रकार के हैं ।

१) विष अनुष्ठान २) गर अनुष्ठान ३) अननुष्ठान ४) तद्हेतु अनुष्ठान और ५) अमृत अनुष्ठान

इस लोक की किसी भी इच्छा से किया गया धार्मिक अनुष्ठान **विष अनुष्ठान** कहलाता है ।

सर्पादिक के जहर अथवा सोमिल वगैरह का जहर (विष) खाने के साथ ही प्राण हरण करता है उसी प्रकार आहार, पुजा, समृद्धि वगैरह की इच्छा से किया गया धार्मिक अनुष्ठान चित्त की शुद्धि का नाश करता है । इससे वह विष अनुष्ठान कहलाता है ।

परलोक में इन्द्र, राजा, महाराजादि की पदवी मिले, दैवी भोग सामग्री मिले वगैरह इच्छा से किया गया धार्मिक अनुष्ठान वह **गर अनुष्ठान** कहलाता है ।

गर अनुष्ठान और विष अनुष्ठान में फरक है । विष अनुष्ठान का आचरण करते समय चित्त की शुद्धि नाश होती है, पर गर अनुष्ठान में क्रिया करते समय चित्त की शुद्धि होती है, पर उसके फल भोगते समय परलोक में वह चित्त शुद्धि का नाश करता है ।

इन दोनों अनुष्ठान को टालने के लिये ही जैन शासन में नियाणा करने की ना कही गई है । एक मात्र मोक्ष के लक्ष से ही धर्मआराधना करने की बात बताई गई है ।

अध्यवसाय शुन्य ऐसी आत्मा की एकाग्रता बिना की संमुर्च्छिम जीवो जैसी क्रिया वह **''अननुष्ठान''** कहलाता है । ऐसे अनुष्ठान लोक संज्ञा अथवा ओघ संज्ञा से होते है ।

अननुष्ठान केवल काय कष्ट रुप है । यहाँ उपयोग पूर्वक की प्रवृति नहीं है, इससे सकाम निर्जरा नहीं.... अकाम निर्जरा मात्र है ।

चरमावर्त काल में प्रवेशी हुई आत्मा की अनुष्ठान प्रत्ये की राग सहित हेतुपूर्वक जो क्रिया वह **''तद्हेतु अनुष्ठान''** है । इस क्रिया में विधि शुद्ध न भी हो पर परिणाम अच्छे होते हैं ।

अमृत की तरह शुद्ध विधि पूर्वक..... अत्यंत अप्रमत्तदशा में..... चित्त शुद्धि पूर्वक.....अत्यंत संवेग विराग से भरपूर जो क्रिया वह **अमृत अनुष्ठान** कहलाता है ।

उपरोक्त पाँच अनुष्ठान में प्रथम तीन अनुष्ठान हेय है, याने त्यागने योग्य है । ये असद् अनुष्ठान हैं ।

अंतिम दो अनुष्ठान उपादेय हैं, याने आरधने योग्य हैं । अंतिम दोनों अनुष्ठान आत्मा को मोक्ष से जोडने वाली होने से योगस्वरुप है ।

योगस्वरुप सद्नुष्ठान चार प्रकार के हैं ।

भेदैर्भिन्नह भवेदिच्छा-प्रवृत्ति स्थिर सिद्धिभिः ।
चतुर्विधमिंद मोक्ष-योजनाद्योगसंज्ञितम् ।।

द्रव्य, क्षेत्र कालादि सामग्री की परिपूर्णता न होते हुए भी शास्त्रोक्त विधि, आराधना, क्रिया, चुस्तरुप से आराधने की अभिलाषा युक्त क्रिया, जिसमें आराधक महात्माओं की कथा सुनने से आनंद आये.... उनके प्रति बहुमान भाव जागता है, और यथाशक्ति उल्लासपूर्वक अनुष्ठान करने में आते हैं, वह **''इच्छायोग जानना''** ।

उपशम विशेष, शास्त्रोक्त आराधना का अनुसरण, अत्यंत उल्लासपूर्वक क्रिया का आचरण वह **''प्रवृति योग''** कहलाता है ।

प्रवृतियोग में क्रिया अतिचार सहित होती है, इससे मन की स्थिरता में यह बाधक बनती है । जब आगे बढते साधक के जीवन में अतिचारों का दोष टल जाता है, उससे आराधक बाधक चिन्ता के दोष से मुक्त बनता है, जिससे जो स्थिरता पूर्वक की क्रिया वह **''स्थिरयोग''** सद्नुष्ठान है ।

साधना में आगे बढते जीव स्वयं के जीवन में तो उपशमादि भाव को प्राप्त करते हैं, पर उनके सानिध्य में आने वाले जीव भी स्वयं के स्वभाव में परिवर्तन पाते हैं । इसकी सिद्धि आजु-बाजु के वातावरण को, उस वातावरण के जीवों को भी स्पर्शते हैं, तब उसे **''सिद्धियोग''** कहा जाता है ।

कई संतो के सानिध्य में सिंहादि हिंसक जीव भी शांत होकर बैठ जाते हैं । उनका हिंसक भाव शांत बन जाता है । सत्य की आराधना में सिद्धि प्राप्त करने वाले साधक के सानिध्य में आये असत्यवादि भी सत्य बोलने लगते हैं । यह सिद्धियोग का प्रभाव है ।

इच्छायोग से अनुकंपा की प्राप्ति होती है । अनुकंपा याने द्रव्य से और भाव से यशाशक्ति दुखियों के दुःख दूर करने की इच्छा प्रवृतियोग से निर्वेद की प्राप्ति होती है । निर्वेद याने संसार के भव भ्रमण से कंटाला-वैराग्य । यह वैराग्य ज्ञानपूर्वक होता है ।

सिद्धि योग से संवेग की प्राप्ति होती है । संवेग पाने वाले जीवो को देवलोक के सुख भी दुःख रुप लगते हैं । और ऐसे जीव एकमात्र मोक्ष के अभिलाषी होते हैं ।

सिद्धियोग से प्रशमभाव की प्राप्ति होती है । प्रशमभाव याने तृष्णा का उपशम । तृष्णा और इच्छा जब उपशमीत हो जाये, शांत बन जाये वहां साधक एकमात्र प्रशमरस में डूबा रहता है । ऐसे साधक अपराधी के लिये भी अपकार बुद्धि धारण करता नहीं ।

अनुष्ठानों की ऐसी परंपरा जानकर हम हमारे साधना मार्ग में प्रथम असद् अनुष्ठानो का त्याग करें.... सद् अनुष्ठानों का प्रबल आलंबन ग्रहण करें । उसमें भी धीरे धीरे आगे बढकर अमृतानुष्ठान के सिद्धियोग को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करके प्रशमरस में डूब कर हाथ में आये इस मनुष्य जन्म को सार्थक करें ।